SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

स्त्री की छवि विखंडित करती फिल्में

सुनीता अवस्थी, (Ph.D.), हिंदी विभाग
राज.स.ध. महाविद्यालय, ब्यावर, अजमेर, राजस्थान, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
सुनीता अवस्थी, (Ph.D.), हिंदी विभाग
राज.स.ध. महाविद्यालय, ब्यावर, अजमेर, राजस्थान, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 08/02/2021
Revised on : -----
Accepted on : 15/02/2021
Plagiarism : 00% on 08/02/2021

शोध सार

तथाकथित आधुनिक कहे जाने वाले फिल्मकार बाते भले ही कैसी भी कर लें लेकिन हैं अभी भी वही सामंतवादी, खुद को श्रेष्ठ समझने की मानसिकता से ग्रस्त। वह सोचते हैं हम कुछ भी नारी स्वतंत्रता के नाम पर दिखा देंगे और वह आज की नारी की छवि को प्रस्तुत करेगा। यह गलत अवधारणा दुखद है, पर सच है। इन दिनों, विशेषकर दूसरे दशक के उत्तरार्द्ध से यह अवधारणा और तीव्र हुई है। वह भी ऐसे फिल्मकारों द्वारा जिन्हें मीडिया का एक बड़ा तबका बहुत सुलझा हुआ फिल्मकार, नारी के पक्ष में खड़ा दिखाता है। विडम्बना यह और है कि उन फिल्मों की आलोचक, मीडिया का एक बड़ा तबका तारीफ भी करता है, और उनकी तारीफों को देखकर आज की नारी, विशेषकर सोशल मीडिया पर सक्रिय नारी इन फिल्मों को देखती है और वह फिल्म अच्छे पैसे कमा जाती है, पर यहीं कई सवाल उस समझदार, बुद्धिमान नारी के मन मे उठते हैं जिनके जवाब कोई देना जरूरी नही समझता।

मुख्य शब्द

नारी स्वतन्त्रता, सोशल मीडिया, जागरूकता, बाजारवाद, महिमामंडित.

आज के समय में सब तरफ नारी सशक्तिकरण, जागरूक नारी, अपने हक और जरूरतों को समझती नारी की बात होती है तो यह काल्पनिक नहीं बल्कि इसमें यथार्थ में बदलाव भी हो रहा है। नारी को सजावट की वस्तु या गूंगी गुड़िया मानने के भ्रम टूट रहे हैं। वह हर क्षेत्र में चाहे लोको पायलट हो, ऑटो चालक हो या एयरफोर्स पायलट हो वह अपनी क्षमता, लगन और समर्पण से आगे बढ़ रही है। सिमोन अपनी किताब द सेकंड सेक्स में दशकों पहले यह बता गई चिंतक दार्शनिक सात्र को यह बता गईं कि मेधा से लेकर अपने आपको व्याख्यायित करने तक नारी को पुरुष की जरा भी

जरूरत नही। हां वह यदि उसे एक साथी, एक सहयोगी के रूप में उसे हर वक्त, हर स्थिति में अपने साथ पा सकता है। वैश्विक दार्शनिक सात्र को सिमोन जैसी सहज, सरल नारी जब अपने विचारों और व्यवहार से लाजवाब कर दिया, इतना की सात्र, दार्शनिक, विचारक उन्हें प्रेमपत्र लिखने लगे।

हमारे यहां हम मुख्य धारा और नए सिनेमा की प्रतिनिधित्व कर रही कुछ चर्चित फिल्मों पिंक, आर्टिकल 375 और थप्पड़ फिल्म पर बात कर रहे हैं, जिन्हें महिलाओ ने भी बहुत सराहा और पुरुषों का तो कहना ही क्या? उन्हें तो ऐसे मौके और फिल्म अधिक आनंद देती हैं जो नारी को उसकी आजादी की बात करते हुए गुमराह करती हैं।

यह कैसी सोच का सिनेमा है?

कुछ वर्ष पूर्व की चर्चित और सफल फिल्म है पिंक, सुजीत सरकार और जूही शुक्ला द्वारा लिखित, जिसे सभी ने सराहा और उसके कई संवाद चर्चित रहे। ना माने ना, यदि लड़की (या महिला) ना करे तो रुक जाना चाहिए। उन्मुक्त यौनाचार और अपनी देह का उत्सव मनाने को उकसाती यह नारी विरोधी फिल्म देख न जाने कितनी 15 से 23 वर्ष की लड़कियां गुमराह हुई और उस राह चल पड़ी जिस पर शायद वह बरसोबरस नही चल पाती। हालांकि यह कोई जरूरी नही की फिल्म देखकर हम कुछ सीखे। परन्तु यह जरूर निश्चित है कि एक लोकप्रिय माध्यम की महिला को सही ठहराती फिल्म जिसे मीडिया बहुचर्चित कर रहा है, ने कई लड़कियो, महिलाओ के मन पर वैसे करने का प्रभाव जरूर छोड़ा, और यहीं इस उत्तर आधुनिक काल का पुरुष का एक उद्देश्य पूरा हुआ। एक पूरे समूह के मन में यह बात बैठा दी कि ऐसे ऐसे कर सकते हैं और ऐसा ऐसा करके आप बच भी जायेंगे। मेरा प्रश्न यह है कि ऐसा ऐसा किया ही क्यों जाए ? जिससे वैसे वैसे बचने की स्थिति और ग्लानि ही क्यों आए? ऊपर से एक महिला द्वारा लिखी गई इस फिल्म में इतने गलत ढंग से स्क्रिनप्ले लिखा गया जो खुद स्त्री को ही बेहद शर्मनाक और अश्लील स्तिथि में ले आता है। यह फिल्म में दिखाई गईं तीनो लड़कियां किनको रिप्रेजेंट कर रही हैं? क्या ऐसी स्थिति की लड़कियां ऐसा ही करेंगी? सबसे बढ़कर अनावश्यक सवाल जो उन्ही का वकील (बुजुर्ग अमिताभ) पूछता है भरी कोर्ट में कि आपने अपनी वर्जिनिटी कब खोई? किसके साथ? क्या आपको उसने पैसे दिए? और उस वक्त लड़की (तापसी पन्नू) के पिता वहाँ होते हैं जो उठकर बाहर चले जाते हैं।

कहने का अर्थ यह इन संवादों के उत्तर भी लड़की से हाँ में दिलवाकर भी यह भी कहलवा दिया कि 19 वर्ष की उम्र में अपने दोस्त से अपनी मर्जी से नजदीकी हुए तो why he paid? क्या तमाशा है यह सोचकर ही गुस्सा आता है कि यह फिल्म स्त्री लेखक की उपज है। आगे बढ़ने से पहले यह और समझ ले कि निम्न मध्यमवर्ग की दूसरी लड़की अपने से 20 साल बड़े एक प्रोफेसर के साथ नजदीकी है, (इससे अधिक खुलकर शब्दो मे नही लिखा जा सकता) और वह उसकी emi देता है। तीसरी भी अपने खर्चो के लिए यही सब करती है। बिंदु यह नही है कि क्या इन लड़कियों की, जो अपनी जरूरतें पूरी करने के साथ यह सब करती हैं, उनकी कहानी क्यो नही हो सकती? बिल्कुल होनी चाहिए लेकिन उस कहानी को आप हर लड़की की कहानी मत बनाइए। हर लड़की ऐसी नही होती। मैं आगे बताऊंगा की इस सबका क्या उद्देश्य है।

रिल्के, जर्मन कवि, चिंतक कहते हैं, ''सतही बातो से तुम्हे सम्भर्मित नही होना चाहिए, क्योकि गहराई में कुछ नियम हमेशा क्रियाशील रहते हैं। जो लोग इसे समझे बिना रहस्य बनाकर इन बातो को जीते है वह अपने में ही सिमटकर रह जाते हैं।'' यही उक्ति लागू करते हैं आजकल अधिक उत्साह से कम बजट की फिल्मों से लाभ कमा रहे अनुभव सिन्हा, निर्माता और निर्देशक। ऐसी ही एक और फिल्म है थप्पड़, जो कहने को तो नारी की जागरूकता और स्वाभिमान की बात कहती है। लेकिन गहराई से देखने पर वह उसे अपनी समस्या के तिल को ताड़ बनाकर आखिर में अकेलेपन के साथ छोड़ देने की सुनियोजित साजिश का हिस्सा भर बनती नजर आती है। संक्षेप में थप्पड़ फिल्म यह है कि घर में एक पार्टी के दौरान किसी गंभीर विषय पर पति के दोस्तो के मध्य पत्नी कुछ जरूरी सुझाव अपनी ओर से कह देती है। पति इस पर गुस्सा होकर उसे थप्पड़ लगा देता है। अब पूरी फिल्म इस पर ही चलती है औरं अंत वही होता है जो बाजार और उसके प्रोडक्ट यह 21वी सदी के निर्देशक चाहते हैं। औरत अकेली अपना घर छोड़ अकेले अपनी राह चुनती है। अब एकबारगी ही यह कहानी अपील नही करती। उसमे यह

स्क्रिनप्ले की कमजोरी कहे या निर्देशकीय बेवकूफी की इस थप्पड़ दृश्य से पहले और बाद भी पति समझदार और पत्नी को प्यार करने वाला, ख्याल रखने वाला है, और साथ ही फिल्म में वह अपनी गलती मानकर माफी भी मांगता है। परन्तु यह हो गया तो फिर समस्या हल हो जाएगी।

समस्या रहेगी तभी तो प्रोडक्ट बिकेंगे

लेकिन बाजार यह नही चाहता। फिर तो परिवार रहेगा, एक घर होगा। नही इसे तोड़ना है दो घर करने है। जिससे अलग अलग प्रोडक्ट बिकें और नारी के रूप में एक और बिना बोले 12–12 घण्टे दिन रात की शिफ्ट में कामकरने वाली सस्ती वर्कर मिले। तो क्या किया जाए? वही तरीका की दोनों स्त्री पुरुष जो एक खूबसूरत रिश्ता, बॉड बनाते हैं उन्हें आपस में लड़ा दें, उन्हें एक दूसरे के सामने खड़ा करदे। यह काम बिना परिवार को नष्ट किए सम्भव नही। तो याद करें वह संयुक्त परिवार आपके बचपन के। जिसमे दादा –दादी, चाचा चाची, बुआ मम्मी पापा और सबके बच्चे होते थे। बाजार की आहट आने तक 90 के दशक तक एक फ्रिज, बहुत हुआ तो दो दोपहिया, जअ एक, और कॉमन ड्रॉईंग रूम, एक रसोईघर। कितना सुकून और कितना समय था सबके पास। अपनी अपनी नौकरी काम धन्धा करते और घर पर बच्चो के देखने, पढ़ने, खेलने आने जाने की कोई चिंता नही। अब यही इतने लोग 21वी सदी के आते आते बन गए एकल परिवार और अब बन गया वह न्युक्लियर यानी सिंगल माँ या पिता का परिवार। उतना ही गुना बढ़ गया खर्च, उतने ही ज्यादा बिकने लगे प्रोडक्ट प्रेशर कुकर से स्कूटी, एक्टिवा तक। और उतनी ही अधिक बढ़ गई आधी आबादी की नौकरी और अपने श्रम करने की आवश्यकता। अपनी योग्यता और ज्ञान से अच्छे से अच्छा कार्य स्त्री कर पा रही है हासिल कर रही है हर मुकाम। लेकिन वह कमाकर हर सुविधा होने की चाह में बाजार की भट्टी में अपनी कमाई स्वाहा करते जाए तब? और परिवार में अनुभव से समझदारी की राह दिखाने वाले बुजुर्ग तो बाजार ने पहले ही बाहर कर दिये। अब बचे पति पत्नी तो उन्हें भी भेदभाव, अलगाव, और अहम के टकराव के नाम पर अलग करने का जरिया बनाया गया। भरपूर मदद की विज्ञापनों, धारावाहिकों और सिनेमा ने। अब तो सोशल साइट्स भी इसी में लगी हैं। जो विचार, विमर्श (discourse) के जरिये थे, किताबे, फुर्सत, आपस मे बातचीत वह सब हमसे कब छीन लिए गए हम ही नही जानते। अब सवाल आया कि काफी अधिक आबादी ऐसी स्त्रियों की है जो अपनी सीमित आमदनी के कारण ऊंचे सपने, महंगे कपड़े, मोबाइल आदि नही ले सकती। तो क्या हुआ ? दुष्ट बाजार ने मासूमियत से रास्ता बता दिया सदियो पुराने उस व्यवसाय का। पिंक, आर्टिकल 375 आदि फिल्मो से यह और भरा की आप वयस्क होने के बाद अपने जिस्म की मालकिन हो। आप इससे भी अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सकती हो। साथ ही ऐसा बकवास सोच की यदि स्त्री तैयार न हो तो ना कहेगी और उसका आप सम्मान करें, उसे इज्जत दे जब तक वह मूड में न आ जाए, या वह यस जब तक न कह दे। माने लड़की बिना विवाह के अपनी मर्जी से चाहे तो वह ऐसे सम्बन्ध विवाहपूर्व जितने चाहे उतने बना सकती है। बहुत बहुत कम प्रतिशत मुश्किल से 1 या 2 प्रतिशत ऐसी लड़कियां हो सकती हैं। लेकिन उस व्यष्टि को महिमामंडित करके समष्टि के लिए लागू करना इन फिल्मों ने किया। कोई आश्चर्य नही यदि एक बड़ी संख्या इस तरफ बढ़ चली हो छोटे शहरों से बड़े शहरों में आई लड़कियों की।

आर्टिकल 375 एक कदम और आगे जाकर एक और रास्ता खोलती है। जिसमे जिस्म को आगे बढ़ने का साधन बनाकर लड़की आगे बढ़ती है, और जब उसके जैसी ही नई लड़की उसी के तरीके से उसको हटाने वाली होती है पहले वाली अपने ऊपर जबरदस्ती किए जाने का केस ठोक देती है। भावुकता भरे तर्क पूर्ण संवाद के जरिये कभी फिल्म पुरुष को दोषी बताती है तो कभी नही, पर अंत मे झूठे इल्जाम लगाने वाली लड़की को महिला जज और महिला वकील बरी कर देते है, और पुरुष फॅस जाता है अपने किए हुए को ही, जो स्वेच्छा से हुआ, के लिए सजा पाता है, उसकी पत्नी तलाक ले लेती है।

स्त्री की नकारात्मक छवि गढ़ती और उसे अंधेरे कोनो मे धकेलती यह तीनो फिल्में हिट रही, और महिला वर्ग में ज्यादा सराही गईं। बिना यह सोचे कि यह उनकी छवि को धूमल करती बाते हैं। उन्हें ऐसा भी कर सकते हैं वाला रास्ता बताती हैं। घर मे हैं तो किस बात को लेकर आप घर छोड़ दो यह मार्ग बताती हैं। कल आप बाई

नही आई या मैं नौकरी करूंगी ही या नही करूंगी, बच्चे को नही जन्म दूंगी तुम दे देना, खाना होटल में खाने नही गए, ड्रेस, फोन, मित्र आदि छोटी छोटी बातों पर लड़कर घर छोड़ दें। समझने या पुरुष की माफी से भी बात खत्म न करे। यह उल्टी पट्टी पढ़ाने वाली फिल्म कोई खास नही चली। क्योकि देश की महिलाएँ समझदार हैं। वह परंपरा और नए बदलाव में समायोजन करना बखूबी जानती हैं, और निसंदेह 21 वी सदी का पुरुष भी उनके साथ साथ चलकर अपने अंदर भी बदलाव करता जा रहा है।

निष्कर्ष

अंधेरा ही बताता है कि उजाला होने वाला है। नए सिनेमा के नाम पर कुछ भी दिखाने की आजादी नही होती। एक संवेदनशील फिल्ममेकर कम से कम यह समझेगा की कहानी के नाम पर नकारत्मकता को महिमामंडित न करे। क्या यह हम कह सकते हैं कि नकारात्मक छवि स्त्री की दिखाने से स्त्रियों को ही ऐतराज नही?क्या मेहनत,योग्यता और अपनी यौनेच्छा को दबाकर कोई लड़की उन्नति नही कर सकती? चाहे वह साधारण परिवार की हो। क्या थप्पड़ का हल वापस थापड़ या सबके सामने भले ही कुछ दिनों बाद क्षमा मांगने, या बातचीत से हल नही हो जाता?, जिससे आगे करोडो परिवारों के सामने परस्पर बातचीत का रास्ता खुलता और वैसे खुला हुआ भी है, पर उसमे फिल्म का नही बल्कि भारतीय परिवेश और संस्कारों का हाथ है, और पुरुष फिल्म में भी आगे सावधान, जागरूक रहता कि उसे अपनी पत्नी को ठेस नही पहुंचानी। यह बात मीडिया और आलोचक नही समझते कि नेगेटिविटी महिमामंडित करने से वह अपनी आधी आबादी को अपमानित ही कर रहे हैं। यह देश ऐसी नारियों से बना है जो अपनी कड़ी मेहनत और योग्यता से जगह बनाती हैं न कि गलत तरीको से।

अंत रिल्के की इन पंक्तियों से 'अधिकांश लोग अपनी क्षमता से पूरी तरह परिचित होने से पहले ही ,कार्य की झूठी छवि को केंद्र में रखते हैं और विक्षेपो की रचना कर लेते हैं। काश वह थोड़ी प्रतीक्षा करते।' हमारी स्त्रियां इतनी समझदार, धैर्यवान और प्रबुद्ध हैं कि वह बाजारवाद की उलटबांसी में नही आती और अब तो वापस परिवार की तरफ वह लौट रही है।

सन्दर्भ सूची

1. सिमोन द बुआ, द सेकंड सेक्स, हिंदी अनुवाद, राजकमल प्रकाशन, 1999।
2. शुजीत सरकार, फिल्म पिंक।
3. अनुभव सिन्हा फिल्म थप्पड़।
4. राइनर मारिया रिल्के, प्रतिनिधि पत्र, अनुवाद राजी सेठ, साहित्य अकादमी, 2012।
5. पटकथा लेखन, एक परिचय, मनोहर श्याम जोशी, राजकमल प्रकाशन, 2009।

****